मानवता:युगधर्म

मानवता मन्दिर - इसकी स्थापना

परमसंत परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज ने सन् 1947 ई. में भारत के विभाजन के पश्चात् आन्तरिक प्रेरणावश मानवता को युगधर्म निश्चय किया था. तब से ही वे इसके प्रचार में लगे हुये हैं. इसी के प्रचार के लिये एक ऐसे स्थान की आवश्यकता प्रतीत हुई, जहां लोग बैठे सकें और सत्संग का लाभ प्राप्त कर सकें और यह मानव जाति के लिये मानवता का प्रतीक रहे और इससे सोचने समझने की सामग्री मिलती रहे. अत: होशियारपुर में इस मन्दिर का निर्माण हुआ. उसके पश्चात् सन 1964 ई. में एक लाइब्रेरी की स्थापना की गई और मन्दिर के प्रबन्ध के लिये एक ट्रस्ट कायम किया गया जिसमें सन्तों का तथा अन्य धर्म ग्रन्थों का संग्रह किया जा रहा है. यहां नित्य प्रति सत्संग होता रहता है और दूर-दूर के लोग आकर सत्संग का लाभ उठाते रहते हैं.

चूंकि लोगों की यह माँग थी कि मानवता के नियम क्या हैं अत: सेठ दुर्गादास और श्री देवीचरन मीतल एडीटर 'शिव' के विशेष आग्रह पर ट्रस्ट यह छोटी सी पुस्तक 'मानवता-युगधर्म' प्रकाशित कर रहा है. यहां मानवता का झंडा नित्य प्रति फहराता रहता है. यह झंडा मानवता के पुजारियों को तथा संस्थाओं को अपने-अपने केन्द्रों पर फहराना चाहिये. विश्वास है कि भारतवासियों तथा मानव जाति को इसमें सच्चा धार्मिक ज्ञान प्राप्त होगा और सुख शान्ति से जीवन बिताने का मार्ग मिलेगा.

विनीत: हरिविलास शर्मा, सेक्रेटरी

मानवता मन्दिर, फकीर लाइब्रेरी ट्रस्ट

होशियारपुर.

मानवता का झंडा

मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम,

प्राणी मात्र का एक निशान,

मानवता की शान गुमान,

इक मालिक की सब सन्तान,

जुग जुग उड़ ऊँचे असमान,
तू प्रान है सब का, तन मन आत्मराम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम ।।

जब देखा तेरा यह हाल,
माँ वसुन्धरा हुई बेहाल,
दाया उमड़ी पुरुष अकाल,
प्रगटे जग में परम दयाल,

भूतल गाड़ा तुमको, मानवता के नाम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम ।।

ऐ मानव तू मानव बन,
हिन्दू मुसलमान न बन,
मालिक बस रहा सब तन,

निज परिवार की सेवा, भक्ति है निष्काम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम ।।

सच्चरित्रता के मार्ग आ,
आशावादी ख्याल बना,
सहित विवेक धर्म कमा,
फिर मालिक को सकेगा पा,

जी और जीने दे, तू उड़ता दे पैगाम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम ।।

रंग तीन से शोभामान,
बाहर जीव और माया जान,
सत चित् आनन्द की खान,
भारतवर्ष का यही निशान,

नीचे इसके आवें, जीव त्रलोकी धाम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम ।

चमके सूरज तीन कमाल,
कबीर साहब नानक कृपाल ,
राधास्वामी शिव दयाल,
मानवता का दिया ख्याल,

द्यौ लोक उड़ाना तुमको, यह परम दयाल का काम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम।।

मानवता के सन्त ने आ,
इंसान बनो आदेश दिया,
जीवन की आधार शिला,
रोग सोग की एक दवा,

सन्देश मेरा पहुँचा दो, देश देशान्तर नगर ग्राम,
मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम।।

अद्भुत झंडा जग में आया,
'इन्सान बनो' इस नाम धराया,
जग कल्याण का रूप रचाया,
इसे सन्त सत्गुरू वक़्त बनाया,

आओ भाई बहनों, सब करें इसे प्रणाम.

मानवता के झंडे, कर जोड़ करें प्रणाम ।।

भूमिका

मानवता:युगधर्म

ज्ञानदीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भंडार से ।

सहज छुटकारा मिले, सब को कठिन संसार से ।।

जीवन विचित्र वस्तु है. अभी संसार का होश आता रहता है. गुरु ऋण से उत्तीर्ण होने और अपना कर्म भोगने के लिये या उस परम तत्त्व आधार की मौज अधीन काम करता हूँ मगर अब काम करने को जी नहीं चाहता. क्यों? पता नहीं. अपने आपसे पूछता हूँ कि वह ज्ञान क्या है? तुमको क्या मिला? कठिन संसार क्या है? दुनिया इस सारी सृष्टि को संसार समझती है. इससे छुटकारा कैसे मिलेगा? यदि अपनी सुरत (आत्मिक धार या तवज्जह) को इस संसार की ओर से हटा लूँ तो बाहर के संसार से छुटकारा मिल जाएगा. संसार तो जैसा है वैसा ही रहेगा. यह तो जिसने बनाया है वही जानता है. भूचाल आते हैं. अभी पूर्वी पाकिस्तान में तूफान आया. लोग मरते हैं. बीमार होते हैं. महामारी आती है तो इस कठिन संसार से छुटकारा कैसे मिलेगा? हम इस संसार को तो बदल नहीं सकते. लाखों पीर पैग़म्बर, अवतार तथा महापुरुष आये. यह संसार जैसा है वैसा ही रहा. यह उसकी मौज है. मेरे अनुभव में अपनी दृष्टि को संसार से हटा दो. तुमको बाहरी संसार के दुख-सुखों से छुटकारा मिल सकता है. मेरी समझ में और कुछ नहीं आया. सोचने वालो सोचो. आदिकाल से दुनिया बनी है अनादि है. किसी ने अन्त नहीं पाया. क्या गौतम बुद्ध ने दुखों का नाश कर दिया? नहीं. इससे छुटकारा पाने का केवल एक ही उपाय है कि अपनी सुरत (तवज्जह) को बाहर से हटा लो. एक हमारा अपना संसार है. हम जो असल में हैं उसके

सामने जो वस्तु आती रहती है वह हमारा संसार है. हमारे शारीरिक भान, मन के विचार, संकल्प-विकल्प, आशायें और वासनायें, आनन्द और शोक एक यह संसार है. यदि हम कुछ कर सकते हैं तो यही कर सकते हैं कि हमारा अपना जो संसार है सको श्रेष्ठ और आनन्दमय बना सकते हैं. इस अपने संसार से यदि हम चाहें तो छुटकारा पा सकते हैं. इसलिये सन्तों, महात्माओं और ऋषियों ने अपने संसार को ठीक रखने के लिये हमें उपाय बताये. कर्म, भक्ति, प्रेम, ज्ञान ध्यान, साधन केवल मनुष्य के अपने ही संसार को ठीक रखने के लिए है. हम देखते हैं कि जब बच्चे को कोई रोग होता है, कहीं गिर जाता है या किसी से मार खाकर आता है तो वह उस दुख से बचने के लिये अपनी सहानुभूति करने वाले माँ-बाप के आगे पुकार करता है. उनकी गोद में चला जाता है. वहाँ उसको उस कष्ट से सुख औऱ शान्ति मिलती है. यों भी देखो कि मनुष्य को जब कोई शारीरिक कष्ट होता है तो वह 'हाय! माँ' कहता है. क्यों? क्योंकि बचपन से उसको माँ का सहारा या आसरा लेने का स्वभाव बना हुआ है. दूसरे इस संसार की उत्पत्ति माँ के पेट से होती है. वह उसकी असल है औऱ हमारे शरीर का आधार हमारी माता है. इसलिये उसको याद करता है. जब मनुष्य को मानसिक दुख होता है अर्थात् उसके अपने मन का या संकल्प का संसार जो उसने स्वयं बनाया हुआ है जब वह उससे दुखी होता है तो वह अशान्त हो जाता है. फिर वह मनुष्य अपने मन से भगवान को याद करता है. कोई ओ लॉर्ड! कहता है, कोई राम कहता है कोई या हज़रत कहता है, कोई गुरु कह देता है. तो उसका मन जिस तत्त्व से निकला हुआ है उस तत्त्व को कोई ईश्वर कह देता है कोई ख़ुदा कह देता है. तो वह मानसिक रूप से सहारा चाहता है. तब उसको शान्ति मिलती है (Relief) मिलता है. इन दोनों को हरेक आदमी जानता है और समझ सकता है.

हमारे अन्तर हमारा आत्मा है जो प्रकाश स्वरूप है. यदि किसी को शारीरिक और मानसिक कष्ट नहीं तो जो उसका प्रकाश स्वरूपी आत्मा है और जब वह प्रकृति के नियम के अनुसार इस मन और शरीर में आने के लिये विवश होता है तो वह नीचे आना नहीं चाहता और दुख प्रतीत करता है. वह जो प्रकाश का भंडार सावित्री है जिसको ब्रह्म, परमात्मा या ख़ुदा कहते हैं. फिर वह उसका सहारा ढूँढता है. उसके शरणागत होता है. इसके आगे एक और मंजिल है जिसको दुनिया समझ नहीं सकती. वह वह चीज़ है जो प्रकाश को देखती है जो अन्तर में स्थानों को देखती हुई अपने संसार को देखती है और उसकी साक्षी है. वह किसी ऐसी वस्तु की ओर जाना चाहती है जो उसका आदि है. सन्त औऱ महात्मा उसको मालिकेकुल, निज स्वरूप आधार या कूटस्थ कहते हैं. तो कठिन संसार क्या है? हमारे अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान बोध (अहसासात) जो हमारे अन्तर में हैं उनका नाम है संसार. इस संसार का नाम भवसागर है. इससे बचने और इसको आनन्दमय बनाने में कौन सी वस्तु सहारा देती है? हम इस भवसागर से तर सकते हैं सहारा लेने से, विश्वास करने से या शरणागत होने से. सिवाय इनके और कोई तरीका या ढंग मेरी समझ नहीं आया. इस अपने संसार को अच्छा और सुन्दर बनाने के लिये यह मज़हब (धर्म) हैं और पंथ हैं. अपने विचारों को अच्छा बनाओ. यही वेद मार्ग है जिसका मुख्य उदेश्य 'शिवसंकल्पमस्तु' है. यह वेद का मूल मंत्र है. इसके लिये है सत्संग. ऐसे पुरुषों की संगत करो कि जिनका मन प्रेममय है दया से भरा हुआ है, जिनके मन में शान्ति है, जिनके मन में परोपकार के भाव हैं. उनकी संगत करने से रेडिएशन के नियम के अनुसार तुम्हारा अपना

जो संसार है उसमें परिवर्तन सकता है और अच्छा बन सकता है. इस संसार में बाहर में भी और अन्तर में भी संकल्प काम करता है. मनुष्य के विचार में बड़ी भारी शक्ति है क्योंकि संकल्प रचना करता है इसलिये हमारा संकल्प ही अपनी दुनिया बनाता है. अपने ही संकल्प से दाता दयाल (महर्षि शिव) पर मेरा विश्वास आया. विश्वास ने मेरे जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन उत्पन्न किया. यह ज्ञान भी मुझे सत्संगियों से मिला. दूसरे आदमी अपने विश्वास से संकल्प और भावना से मुझको या मेरे रूप को जाग्रत, स्वप्न और समाधि में बना लेते हैं और उस रूप से सहायता लेकर अपनी मनोकामनायें पूरी कर लेते हैं, अन्तर में मेरा रूप प्रगट करके आनन्द लेते हैं और पथ-प्रदर्शन (Guidance) लेते हैं मगर मैं नहीं होता और न मुझे पता होता है. इसलिये मुझे यह ज्ञान हो गया कि इन्सान के अपने ही मन के संकल्प में बहुत बड़ी शक्ति है. तो तुम अपने संकल्प, विचार, श्रद्धा, विश्वास औऱ सच्ची आस से अपने इस संसार को अच्छा बना सकते हो. यह है सत ज्ञान.

यह ज्ञान मुझे इस तरह मिला कि कुदरत ने हुजूर दातादयाल (महर्षि शिव) द्वारा मुझ पर यह ड्यूटी लगाई कि जगत कल्याण और अबल, निबल और अज्ञानी जीवों के लिये काम कर जाओ. इसलिये मैं काम करता हूँ.

अबलता क्या है? हमारा किसी जगह विश्वास का न होना ही अबलता है. कौन व्यक्ति आस्तिक है? दुनिया आस्तिक का अर्थ कुछ और लेती है और नास्तिक का अर्थ कुछ और लेती है. मैं आस्तिक उसको समझता हूँ जिसका कहीं न कहीं विश्वास है. अब रह गया सवाल कि मनुष्य किस पर विश्वास करे. तो जिस धर्म में, जिस वातावरण में वह पैदा हुआ है, जैसे संस्कार हैं या वह अपने धर्म, पंथ और वातावरण के अनुसार जहाँ भी उसका विश्वास रह सकता है और जिस रूप द्वारा उसका विश्वास रह सकता है, वह वहाँ विश्वास रखे. विश्वास की श्रेणियाँ हैं. जिनकी बुद्धि अभी विकसित नहीं हुई, वे जल्दी ही किसी जगह विश्वास कर सकते हैं. जिनकी बुद्धि तीव्र हो जाती है, काट-छांट करने वाले हैं उनके लिये आस्तिकपना महाकठिन है. बाहर के गुरु की यही महिमा है कि वह जीव की प्रकृति के अनुसार उसके वातावरण और संसार के अनुसार उसका पथ-प्रदर्शन करता है और उसके विचार के अनुसार उसे सहारा देता है. ऐति मार्ग आस्तिकपना है और नेति मार्ग नास्तिकपना है. यह क्रियात्मक दृष्टि से कह रहा हूँ. जो ऐति-नेति के झगडों में रहते हैं उनको शान्ति नहीं मिलती. कोई साकार पर और कोई निराकार पर विश्वास रखता है. कोई शब्द पर कोई प्रकाश पर विश्वास रखता है. ये भी श्रेणियाँ हैं. यह सब ऐति मार्ग है. इसलिये सन्तों के मार्ग में जीवित गुरु की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है. लोग कहते हैं कि हम पुस्तकें पढ़ कर विश्वास ला सकते हैं और अपनी अंतर की दुनिया को श्रेष्ठ बना सकते हैं. यह किसी हद तक ठीक है मगर मुर्दा हैं. जीवित पुरुष के जीवन की जो एनरजी (शक्ति) है उसकी जो रेडिएशन है यह मनुष्य के मस्तिष्क, मन और विचारों पर अधिक प्रभाव करती है. दीपक जलाने के लिए अग्नि की आवश्यकता है. दीपक जब प्रकाशित होगा दीपक से ही होगा. मेरे अनुभव में आया है कि पुस्तकें पढ़ने से मनुष्य के जीवन में परिवर्तन कम आता है. इसका प्रमाण मैं दे सकता हूँ. जो पुस्तकें पढ़ने वाले हैं, वेद-शास्त्र पढ़ने वाले हैं, कीर्तन करने वाले हैं, वे अपने जीवन को देखें कि उनके जीवन में कितना सुधार हुआ है. मेरे संपर्क में बड़े-बड़े आये जो निगुरे थे, जिन्होंने किसी

जिन्दा पुरुष से संस्कार नहीं लिया, रेडिएशन नहीं ली. उनके हालात देखे, सुने और पढ़े. वे भी दुखी हुये और अशान्त हुए. मन की शान्ति में आकर अशान्त हुए. हुजूर दाता दयाल ने एक पुस्तक में लिखा है कि मैंने वेदान्त पर बहुत कुछ लिखा. मैं विद्वान हूँ. बुद्धि से धार्मिक जगत को छाना है मगर शान्ति नहीं मिली. फिर वे हुजूर महाराज की संगत में गये. वहाँ से उन्होंने नाम दान लिया. नाम दान क्या है? ज्योति जलाना है और संस्कार देना है. जो क्रियात्मक (Practical) मनुष्य है जिसका संस्कार ठीक है जो अपने संसार से पार जा चुका है, ऐसे सत पुरुष की संगत करने की आज्ञा है. दुनिया से या संसार से तो कोई पार नहीं गया. यह तो एक और बात है. इसे सत्पुरुष जानते हैं कि मनुष्य के जीवन को, वह जिस कठिनाई में आया हुआ है, उसको कैसा नाम दें. नाम कई प्रकार का है. कहीं शारीरिक सुख का नाम है, कहीं मानसिक सुख का नाम है कहीं आत्मिक सुख का नाम है और कहीं परम शान्ति का नाम हैं. ये श्रेणियाँ हैं. यह जो नाम का क्रम है इसमें भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं. मानसिक सुख देने का जो नाम है जिससे दूसरों को मानसिक सुख मिले, शान्ति मिले, मानसिक आनन्द मिले, यह और नाम है. जिससे आत्मिक आनन्द और सुख मिले वह और नाम है. जिसको संसार से सदा के लिये परे जाना है उसके लिये और नाम है. यह नाम गुरु देता है, जैसी कि जिसकी प्रकृति है, जैसा जिसका भाव है. हर एक आदमी हर एक नाम का अधिकारी नहीं है. इसलिये संतों में पांच नाम है. कहीं सहस्रार, कहीं ओंकार, कहीं रारंकार कहीं सोहंकार, कहीं सत नाम है. कहीं निज नाम है. यह है नाम की असलियत.

नाम रहे सतगुरु आधीना।

नाम गुरु के अधीन है और ऐसे ही शब्द में लिखा है:-

ज्ञान दीजै ज्ञानदाता, ज्ञान के भण्डार से ।
सहज छुटकारा मिले, कठिन कारागार से ।।
कहने को तो बन्ध मुक्ति, कल्पना मन की सही ।
बिन दया सतगुरु के वह, मिटते नहीं हैं जीते जी ।।

तो अपने ज्ञान से या अपनी इच्छा से जो जी चाहे करें किन्तु सत्गुरु की दया के बिना वह शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता. सत्गुरु दया कैसे करता है? वह संस्कार देता है दो प्रकार से. जो बुद्धि वाले हैं जिनकी बुद्धि पहले ही खराद पर चढ़ी हुई है उनको जुबान से वाणी कहकर उनकी बुद्धि को पहले निश्चयात्मक करती है. यह बाहर का सत्संग है. एक नाम है किसी के अन्तर कोई वस्तु भर देना (Imbibe कर देना). उसको कहते हैं दीक्षित होना, नाम दात लेना. हर एक आदमी नाम दान का अधिकारी नहीं है, जब तक कि उसकी बुद्धि को पहले निश्चयात्मक न किया जाय. इसलिये सत्संग और नाम है.

नाम का दे आसरा, चरणों में अपने लीजिये ।

शब्द की महिमा बताकर अपना सेवक कीजिये।।

यह नाम है पांच नाम. जब मानसिक अवस्था और आत्मिक अवस्था पूर्ण हो जाती है, तब शब्द ब्रह्म का नाम आता है. इसलिये किसी पूर्ण पुरुष, निष्काम पुरुष जो स्वयं इस भवसागर से तरा हुआ है उसकी संगत में जाकर उससे प्रेम का संबन्ध जोड़ो. उसके सेवक बनो और जो वह कहे उस पर चलो. दुनिया यह समझती है कि यह मानव पूजा है लेकिन बिना मानव-पूजा के किसी का गुजारा नहीं है. बच्चा मानव-पूजा के बिना अपने माँ-बाप के साथ प्रेम करने के बिना सुख प्राप्त नहीं कर सकता. क्या यह मानव-पूजा नहीं है? दुनिया ने गलत समझा है. इन्सान का गुरु इन्सान है. ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म या परब्रह्म यह तो प्रकृति की इस सृष्टि के बनाने वाले हैं मगर मनुष्य को जब बनायेगा इंसान ही बनायेगा. मनुष्य के बनाने का अर्थ यदि शरीर भी समझो तो तुम्हारे शरीर को भी तो मनुष्य ही ने बनाया है इसलिये सबसे अधिक मनुष्य की क़द्र (value) है. मेरी समझ में जो आया है अपने कर्म भोग वश कह चला. मनुष्य मनुष्य के अधीन है. जो मनुष्य मनुष्य को छोड़ कर किसी और वस्तु की सेवा या पूजा का दावा करते हैं मैं क्या कहूँ कि वह गलती पर हैं या नहीं, मगर वह स्वयं अनुभव करेंगे कि उनको शान्ति नहीं मिलती. तुम व्यवहार में देखो. आदमी को आदमी ही रोटी बनाकर खिलायेगा. किसी ईश्वर ने या बाहर से किसी ने आकर रोटी बना के उसको नहीं देनी. तो कैसे मनुष्य मनुष्य से अलग होने की कोशिश करता है. इसलिए इस संसार में यही ज्ञान है कि ऐ इन्सान! तू सहायता कर और सहायता ले. इस संसार में तुमको यदि कोई ख्याल या संस्कार भी देगा तो कोई मनुष्य ही देगा. बुद्धि भी तुमको यदि मिलेगी तो किसी मनुष्य से ही मिलेगी. इस निज अनुभव के आधार पर मैंने सन् 1947 में 'इन्सान बनो' की आवाज़ उठाई थी ताकि उस ऋण और कर्तव्य जो मुझ पर हुज़ूर दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी ने सन् 1933 में लगाया था कि फकीर! चोला छोड़ने से पहले शिक्षा को बदल जाना, उऋण हो जाऊँ. मैंने अपने प्रेमी मित्र सेठ दुर्गादास जी को कहा था कि काम करो और कुछ पैसे की सहायता करो ताकि मैं अपना कर्त्तव्य पूरा कर जाऊँ. उन्होंने प्रारम्भ में जो मैंने सन् 1947 में 'मनुष्य बनो' नामी पुस्तक लिखी थी उसका खर्चा सहन किया. मानवता मन्दिर की ज़मीन को लेने या अन्य कामों में काफी सहायता की और अब भी करते हैं. इनके अतिरिक्त संत सर्वश्री हरविलास शर्मा, मास्टर मोहनलाल, पं. पुरुषोत्तमदास, सरदार लालसिंह, भक्त मुंशीराम और नरायणदास आदि ने मेरे कर्म कटाने में मेरी सहायता की. मेजर जनरल (रिटायर्ड) जैसिंह ने प्रबन्ध संबन्धी कार्यों की जिम्मेदारी ली.

मेरी सत्यता और स्पष्ट वर्णन के कारण बहुत कम आदमी हैं जो ज्ञान से और निष्काम भाव से मेरे विचारों के प्रचार में मेरी सहायता करते हैं. विश्व प्रेमी ऐडीटर और संचालक 'मनुष्य बनो' श्री देवीचरन मीतल ऐडीटर 'शिव' और दयाल स्वरूप नन्दू भाई जी महाराज ऐडीटर 'दयाल' का अहसान मानता हूँ जो मेरे कर्म काटने में मेरी सहायता करते हैं. मेरी इच्छा है कि मानवता के असली तत्त्व को जन साधारण (आम पब्लिक) तक पहुँचाया जाय. इस लिये मानवता के भाव और सिद्धान्तों को और मेरी भावनाओं और विचारों को लेकर ट्रस्ट वालों ने और एडीटर शिव श्री देवीचरन मीतल ने इनको पुस्तकीय रूप दिया है. जो लोग यह समझते हैं कि मेरी विचाराधारा सत्य है और इसके बिना मानव कल्याण असम्भव है उनसे अपील करूँगा कि

मानवता (इसानियत) के प्रचार में मानवता मंदिर के ट्रस्ट वालों की सहायता करें. यहां अस्तपताल भी है. असहाय जीवों, विधवाओं और अनाथ बच्चों की यथाशक्ति सहायता भी होती है मेरी अधिकतर इच्छा इस सत्ज्ञान के प्रचार में रहती है.

फ़कीर

प्रथम भाग

मानवता:युगधर्म

मानवता ही आज के समय में युगधर्म है और इसी का वर्णन इस पुस्तक में किया जायगा .चूँकि धर्म का अर्थ लोगों ने कुछ का कुछ समझ रखा है और भूल भ्रम में पड़ कर अंध विश्वास से कोई किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय से बँधा हुआ है कोई किसी से, इसलिये पहले धर्म का अर्थ बता देना आवश्यक है. 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है और 'मन्' प्रत्यय है. 'धृ' का अर्थ है धारण करना, ठहरना और 'मन्' का अर्थ है जानना अर्थात् किसी सिद्धान्त या नियम को जानना और उसको धारण करना.

प्राचीन काल से अब तक मनुष्य को सुख शान्ति देने के लिये भारतवर्ष में ऋषियों, संतों तथा महापुरुषों ने समयानुसार देश, काल, पात्र की दृष्टि से भिन्न-भिन्न सिद्धान्त या नियम बनाये. उस समय के लिये वे अनुकूल रहे. किसी समय वैदिक धर्म का प्रचार था. अपने समय पर बौद्ध धर्म आया, वैष्णव धर्म आया. जब इन धर्मों में ह्रास हुआ तो कबीर साहब, नानक साहब प्रकट हुये औऱ संत मत का प्रचार हुआ. वे धर्म भी केवल वाचक ज्ञान रह गये. तदोपरान्त राधास्वामी दयाल प्रकट हुये. स्वामी दयानन्द ने फिर वैदिक धर्म का डंका बजाया मगर इनकी शिक्षा भी वाचक ज्ञान तक सीमित रह गई. और भी अनेक महापुरुषों ने अनके धर्मों की स्थापना की, मगर इनके वास्तविक आचरण करने वाले तथा तत्त्व को समझने वाले नाम मात्र को रह गये. इसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में धर्म के तत्त्व को न समझकर अनेक धर्म-सम्प्रदाय बन गये और उनके अनुयायी कट्टर पक्षपाती हो गये और धर्म की सच्ची समझ से वंचित रहे. एक धर्मावलम्बी दूसरे से घृणा और द्वेष करने लगा. परिणाम यह हो रहा है कि धर्म ने नाम पर नित्यप्रति झगड़े होते रहते हैं.

आज का समय बिल्कुल बदला हुआ है. खान-पान रहन-सहन में भारी परिवर्तन आ गया है. दिखावा और आवश्यकतायें बढ़ी हुई हैं. धर्माचरण ने भी दिखावे का रूप धारण कर लिया है. मनुष्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उचित-अनुचित रूप से धन कमाने में चिपटा हुआ है भ्रष्टाचार बढ़ा हुआ है, दुखी और अशान्त है. पश्चिमी देशों में अतुलित संपंत्ति है. अमेरिका में लोगों के पास धन की कमी नहीं है मगर वहाँ भी अशान्ति का बोलबाला है.

यह दशा क्यों है? क्योंकि मनुष्य को यह ज्ञान नहीं है कि तू कौन है. दूसरे शब्दों में आत्मज्ञान या रूहानियत की शिक्षा नहीं रही. संत मत जो आत्मज्ञान की शिक्षा देने आया था उसमें भी असलियत लोप हो गई. आत्म स्थिति वाले नहीं रहे. यदि हैं भी तो नाममात्र को. अधिकतर मान-बड़ाई और प्रलोभन में आ गये या डेरे, धामों के, गद्दियों के फंदे में फँस गये.

मानव जाति आज भौतिकवाद में फँस गई है. प्रतीत तो यह होता है कि मानव ने बड़ी उन्नति की है कि चन्द्रमा तक पहुँच गया है. एक एटम बम से संसार का विध्वंस किया जा सकता है मगर चारों ओर अशान्ति का वातावरण छाया हुआ है. मानव जाति आज दुखी है. इसलिये समय के अनुसार सच्चाई का मार्ग बताने तथा उसके सिद्धान्त वर्णन करने की आवश्यकता हुई जिससे लोग सुख शान्ति प्राप्त कर सकें.

सच्चाई का मार्ग

वह सच्चाई का मार्ग क्या है? आज के समय के लिये परिस्थितियों तथा वातावरण के अनुसार जबकि मानवजाति भौतिकवाद (materialism) और मानसिकवाद में फँसकर अपने आपे या आत्मज्ञान को भूल गई है उसके लिये सच्चा मार्ग 'मानवता' ही है अर्थात् मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बने. इसका अभिप्राय यह है कि भौतिक और मानसिकवाद की त्रुटियों को दूर किया जाय.

मानवता का नया नाम क्यों?

सम्भव है लोग यह कहें कि यहाँ तो पहले ही से अनेकानेक धर्म सम्प्रदायों के नाम मौजूद हैं फिर इस नये नाम की आश्यकता क्यों हुई! कोई पुराना नाम ही क्यों नहीं रहने दिया गया.

'मानवता' कोई नया धर्म तो नहीं है. हाँ, इतना अवश्य है कि स्पष्ट रूप से इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है. पहले भी इसका वर्णन कहीं-कहीं मिलता है.

कबीर ने कहा है :-

मानव बनकर ना जिया, जिया तो डांगर ढोर ।

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज ने भी अपनी पुस्तक 'लाइट आन आनन्द योग' में लिखा है-- Be man - entire, whole and in everything (अर्थात् हर प्रकार मनुष्य बनो). कुल धर्म सम्प्रदाय एक विशेष समुदाय तक ही सीमित हो गये हैं और हरेक को दूसरे के धर्म सम्प्रदाय से घृणा और द्वेष है, इसलिये किसी पुराने नाम को हर एक वर्ग या संप्रदाय वाले मानेंगे नहीं इसलिये भी 'मानवता' शब्द उचित है.

आज के समय में आत्मज्ञान की शिक्षा केवल वाचक ज्ञान बनकर रह गई है और मानव जाति अज्ञान के कारण अपने-अपने संप्रदायों से बँधी हुई है इसलिये एक को दूसरे से घृणा और द्वेष है. इसका परिणाम यह हुआ जो सन् 1947 में भारत के विभाजन के समय रक्तपात के रूप में देखने को आया. हजारों घर नष्ट हो गये, संपत्तियाँ लुट गईं व हजारों बेवायें और अनाथ बच्चे बिलखते रह गये. इस दुर्दशा से मुझे बड़ा आघात पहुँचा और मानव जाति को सत मार्ग बताने के लिये प्रार्थना करते-करते समाधि में चला गया. कई घंटे के पश्चात जो चेत हुआ तो यही प्रेरणा हुई

कि मनुष्य वास्तविक रूप से मनुष्य बने. उसी समय मैंने 'मनुष्य बनो' को युगधर्म माना और 'मनुष्य बनो' का झंडा अपने मकान पर लगाया. उन्हीं दिनों में 'मनुष्य बनों' नामी पुस्तक भी लिखी जो हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी में प्रकाशित हो चुकी है. इसलिये 'मानवता' के शब्द को ही मैंने उचित समझा है और इसी के प्रचार का कार्य करता हूँ.

मानवता मन्दिर

इस प्रचार कार्य के करने के लिये यह महसूस हुआ कि एक स्थान ऐसा अवश्य होना चाहिये जहाँ लोग आ सकें, बैठ सकें और सत्संग का लाभ उठा सकें. इसी दृष्टि से निष्काम, नि:स्वार्थ भाव से 'मानवता मन्दिर' की स्थापना होशियारपुर में की गई और उसके प्रबन्ध के लिये एक ट्रस्ट नियत कर दिया गया. मुझे उसके साथ कोई लाग-लपेट नहीं है.

मानवता

प्रत्येक मनुष्य समझ-बूझ आ जाने पर यही चाहता है वह सुख शान्ति प्राप्त करे, उसकी आवश्यकतायें पूरी होती रहें और दुखों से निवृत्ति हो. इसके लिये नियमित सिद्धान्तों, उसूलों या नियमों पर चलना पड़ता है. इन्हीं नियमों को धर्म कहा जाता है. इसी विषय पर मैं वर्णन करूँगा ताकि मनुष्य की गलत धारणायें और मान्यतायें दूर हो जाएँ.

मानवता की पूर्ण अवस्था

केवल वह मनुष्य जो देह, मन और आत्मा को समय के अनुसार ढाल कर अपने और दूसरों के लिये लाभकारी हो सकता है, 'पूर्ण मानव' है. जो केवल आध्यात्मिक (रूहानी) मनुष्य है वह पूर्ण पुरुष नहीं है. जो केवल बुद्धिमान है वह भी पूर्ण पुरुष नहीं है. जो केवल शरीर तक ही सीमित है वह भी पूर्ण नहीं है. पूर्ण वह है जिसमें आत्मा, मन, देह की समस्त शक्तियाँ समय और आवश्यकता के अनुसार अपने लिये या दूसरों के लिये सुखदाई हो सकती हैं. यह मेरा निज अनुभव है. लोग पूर्ण समझते हैं आत्मा को या निज स्वरूप (ज़ात) को. वह तो बीज रूप है जैसे आम की गुठली है उसमें उस आम की गुठली से तुम्हारी तृप्ति नहीं हो सकती. तृप्ति जब होगी जब वह गुठली आम का वृक्ष बन जायगी. इसलिये कोई पूर्ण है तो केवल वह मनुष्य है जो देह, मन, आत्मा के खेल में रहता हुआ अपने व दूसरों के सुख का कारण बन सकता है. यही मेरा मानवता से भाव है.

मनुष्य कौन है

साधारणतया मनुष्य की दृष्टि इस स्थूल देह, स्थूल जगत तथा भौतिक पदार्थों तक ही सीमित हो गई है. वह इसी को सब कुछ समझ कर इसमें इतना फँस गया है कि मन और आत्मा की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में फँस कर बुरे-भले कर्म करता रहता है.

वास्तव में इस देह को ही मनुष्य नहीं कह सकते. इस शरीर के तीन भाग हैं :- स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर ये तीनों शरीर मिल कर काम करते हैं और इन तीनों में इतनी घनिष्ठता है कि एक को दूसरे से अलग करना कठिन है. इन तीनों के मिले बिना कोई काम मनुष्य कर नहीं सकता. इसके उपरान्त एक शक्ति या परम तत्त्व और भी है जो इस देह में रहता हुआ इन सब के कार्यों का साक्षी है. इन तीनों की व्याख्या इस प्रकार है:-

स्थूल शरीर-- यह स्थूल देह जो प्रत्यक्ष में दिखाई पड़ती है- यह मनुष्य शरीर का एक भाग है. केवल देह को मनुष्य नहीं कह सकते. स्वप्न और सुषुप्ति में यह निष्क्रिय हो जाता है फिर भी कोई शक्ति है जो काम करती रहती है.

सूक्ष्म शरीर-- इस स्थूल देह में एक सूक्ष्म शक्ति मन है जो दिखाई नहीं पड़ता मगर जाग्रत और स्वप्न तक में इसका कार्य होता रहता है. इस मन के बिना शरीर कोई कार्य नहीं कर सकता. पहले हर एक काम का विचार मन में आता है और वहाँ से वह मन शरीर को गति देता है और वह काम करने लगता है.

इस मन का अनुभव स्वप्नावस्था में किया जा सकता है जब वह अपनी अनेक प्रकार की रचना करता है मगर जागने पर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता. हाँ थोड़ा बहुत स्वप्न के दृश्यों की याद रह जाती है. मगर गहरी नींद में जाकर मन भी कोई कार्य नहीं करता और न कर सकता है. अत: यह मन भी किसी शक्ति के अधीन है जिससे इसको शक्ति मिलती है.

कारण शरीर-- यह बीज रूप है. यह आत्मा है. वह ज्योति स्वरूप है, प्रकाश है. मन और देह की रचना प्रकाश से ही होती है. इसे यों समझ लो कि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर न आये तो कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती. इस शक्ति, तत्त्व या ज्योति से रचना होती है. इसका अनुभव गहरी नींद में जाकर मनुष्य करता रहता है. गहरी नींद से जागने पर मनुष्य यह प्रतीत करता है कि आज बड़े आनन्द की नींद आई.

उस अवस्था में आनन्द ही आनन्द है कोई दुख-सुख, क्लेश-शोक आदि नहीं हैं. यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक काम आनन्द या खुशी के लिये करता है. वह उस खुशी या आनन्द को स्थूल पदार्थों में टटोलता है. असली आनन्द कहाँ है और कैसे प्राप्त होता है इसका उसको ज्ञान नहीं है. सत् स्थूल देह है, चित् चिन्तन मनन करने वाला सूक्ष्म शरीर है और आनन्द देने वाली शक्ति आत्मा है.

बुद्धि से तो यह मनुष्य समझ सकता है कि मैं देह नहीं हूँ, मगर केवल समझ लेने से वह आत्म अवस्था में ठहर नहीं सकता. देहाभिमान छूटता नहीं. अतः आत्म अनुभव की आवश्यकता है.

इसके अनुभव या ज्ञान हो जाने के बाद मेरे अमली (क्रियात्मक) जीवन में यह आया है कि शब्द और प्रकाश या आत्मा में रहने वाला महात्मा जब शरीर और मन में आयेगा वह जीवन की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये दूसरों का सहयोग पाने या उन पर आश्रित होने के लिये विवश होगा. इसलिये मैंने मानवता का शब्द गढ़ा है कि चाहे कोई आत्मनेष्टी हो, योगी हो, ध्यानी हो, ज्ञानी हो, सन्त या परम सन्त हो, इसके लिये संसार में रहते हुए, शरीर और मन रखते हुये यह आवश्यक है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये तथा मानव के हित के लिये काम

करे. यह आत्म-अनुभव केवल विशेष-विशेष आदमियों की मानसिक और आत्मिक शक्तियों को शान्ति देना या आनन्द देना है, परन्तु मैंने इस आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म इन सब श्रेणियों में क्रियात्मक (अमली) रूप से जाकर देखा है, शान्ति नहीं है. यह केवल एक अहंभाव है. आत्म-आनन्द भी एक अहंभाव है. समय आता है जब प्रकाश और शब्द में रहने वाले महापुरुष भी ऐसे गिर जाते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं.

मैं मानवता इसको समझता हूँ जो सत्, चित् और आनन्द के प्रभावों में नहीं फँसता किन्तु इस सत्-चित्-आनन्द के प्रभावों को एक खेल समझता है. जब यह ज्ञान हो जाता है तो उसकी विदेह गति या जीवन मुक्त अवस्था आ जाती है. वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप को समझता हुआ इनमें फँसता नहीं. यह मानवता की चोटी है. सत्संग और साधन के बाद अनुभव होने पर जीवन में अमली रूप से रहना मानवता है. फिर वह देह, मन और आत्मा से अपने और दूसरों के कल्याण के लिये काम करता है.

मनुष्य क्या है

वास्तव में मनुष्य चेतन का एक बुलबुला है जो इस शरीर में आकर खेल करता है. जब तक उसको अपना ज्ञान नहीं होता, वह दुख-सुख के प्रभावों से बच नहीं सकता.

इस ज्ञान के प्राप्त करने के संबन्ध में यह आवश्यक है कि वह शारीरिक धार्मिक और पथ-प्रदर्शकों तथा आचार्यों के संबन्ध के दृष्टिकोण से जो उसने अपने आप को बाँधा हुआ है और इसको ही ठीक समझा जाता है, इसको जाने कि वह कहाँ तक ठीक है. इसलिये इसकी संक्षेप में व्याख्या करना आवश्यक है ताकि उसका यह भ्रम मिट जाय और आगे की ओर कदम बढ़ा सके.

मनुष्य शारीरिक दृष्टिकोण से

प्रत्येक मनुष्य अपने आपको कुछ न कुछ समझने पर विवश है. कोई अपने आपको हिन्दू समझता है, कोई मुसलमान, सिख, जैन, बौद्ध, ईसाई इत्यादि. यह भेद भाव धर्म के आधार पर है. इसके अतिरिक्त देश में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी पार्टियाँ औऱ धड़े बंदियाँ होती हैं. इसके परिणाम स्वरूप कोई अपने आपको कांग्रेसी, मुस्लिम लीगी, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट इत्यादि समझ रहा है और इन पार्टियों और धर्मों से गुट बद्ध हो रहा है जो उसे पक्षपाती और तंग दिल बनाये हुये हैं. इसके कारण वह व्यक्ति सच्ची स्थिति से नितान्त अनभिज्ञ है.

मनुष्य का शरीर जो कि जन्म के समय बहुत छोटा सा होता है पहले माँ के दूध से फिर खुराक खाने से बढ़ता है और बलिष्ठ होता हुआ मनुष्य का पूर्ण आकार ग्रहण कर लेता है. सिद्ध हुआ कि शरीर की लंबाई, चौड़ाई और मोटाई खुराक से बनती है जो कि देश की भूमि में पैदा हुई है. दूसरे अर्थों में मनुष्य का शरीर माँ के पेट से बाहर आने के पश्चात देश की खुराक से बढ़ता है और जीवित रहता है. यदि भोजन न मिले तो उसका पालन-पोषण तो एक तरफ वह तो नष्ट हो

जायेगा. अब देखिये कि मनुष्य का गर्भाधान कुछ वीर्य के कीड़ों से, जिन्हें अंग्रेजी में (Sperm) कहते हैं, होता है. यह शक्ति पिता के अन्दर देश के खाद्य, पदार्थों से पैदा हुई और खाद्य सामग्री से यह वीर्य बना है जिसमें यह कीट पैदा होता है. इससे सिद्ध हुआ कि हमारा शरीर देश के खाद्य पदार्थों से न केवल पलता है किन्तु बना हुआ भी उसी का है. अर्थात देश की भोजन सामग्री ही ने एक प्रकार से बदल कर मनुष्य के शरीर की आकृति ग्रहण कर ली है जो न हिन्दू है, न मुसलमान, न सिख, न ईसाई आदि-आदि.

इससे यह सिद्ध होता है कि तुम्हारा शरीर तुम्हारे पास देश की धरोहर है. यदि शारीरिक रूप में तुम कोई घमंड या अहंकार कर सकते हो तो यह कि तुम अमुक देश के निवासी हो. यह असली और सच्चा अहंकार शारीरिक ढंग से है. इसके होने से तुम में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और घमंड का नाम निशान भी नहीं रह सकता, क्योंकि यह देश ही वास्तव में हमारी शारीरिक दृष्टि से सच्ची माँ है और इसके बच्चे तुम्हारे सच्चे भाई हैं.

मनुष्य शारीरिक जीवन के दृष्टिकोण से

अब सुनो जीवन क्या है? हमारा जीवन पिता के वीर्य से हुआ. इसमें हम कीड़े थे. इस कीड़े में क्या चीज़ थी? तुम कहोगे जीवन. जीवन कहाँ से आया? कैसे आया? इसका उत्तर धर्मावलंबी पृथक-पृथक ढंग से देते हैं. यद्यपि इनके उत्तर सच्चे हैं परन्तु वर्णन शैली से मतभेद के कारण सन्देह और भ्रम पैदा होते हैं इसलिये जो कुछ सोचा जाता है इस पर मनुष्य का पूर्ण विश्वास नहीं होता है. सुनिये! वह कीड़ा वीर्य से बना है. वीर्य रुधिर से और खाद्य पदार्थों से बना है.

वे खाद्य-पदार्थ पृथ्वी से उत्पन्न हुये. जब तक कि सूर्य और तारागणों की किरणें पृथ्वी पर न गिरें, पृथ्वी खाद्य पदार्थ पैदा नहीं कर सकती. इसलिये सूर्य और तारागणों की किरणें जीवन हैं. यह जीवन भिन्न-भिन्न दशाओं में होता हुआ हमारे शरीर में ठहर कर हमको चलायमान रखता है या जीवित रखता है. यह ताप और प्रकाश तमाम संसार का जीवन है.

हिन्दू शास्त्रों ने दुनिया के पैदा करने वाले का नाम ज्योति स्वरूप या ईश्वर रखा हुआ है. यह ज्योति स्वरूप क्या है? वह ताप, प्रकाश और तेज का भंडार है.

वर्तमान विज्ञान भी इस सूर्य से परे एक महान सूर्य तक पहुँचा है. यदि तुम अधिक प्रमाण चाहते हो तो अपनी मृत्यु और जीवन को ध्यान से देखो. ज्योंही शरीर की अग्नि समाप्त हुई कि मनुष्य मर जात है. यदि शरीर में गर्मी है तो मनुष्य जीवित है. अपने आपको मस्तिष्क में इकट्ठा करो. तुम्हारे अन्दर प्रकाश प्रकट होगा. अधिक क्या कहूँ. इतना ही काफी है. यह हमारा तुम्हारा शारीरिक जीवन ताप, प्रकाश और तेज ही है. यह भिन्न-भिन्न तारागणों और सूर्य किरणें हैं जो मिश्रित दशा में प्रत्येक शरीर के अन्दर कार्य करती हैं. अतः शारीरिक जीवन के दृष्टिकोण से हम सब एक हैं.

मनुष्य भाव विचार के दृष्टिकोण से

यह आवश्यक है कि मनुष्य को यह ज्ञान हो कि विचार क्या वस्तु है. कैसे उत्पन्न होता है और क्यों उत्पन्न होता है.

देह अलग वस्तु है, जीवन अलग वस्तु है और विचार-भाव अलग. संगठित रूप से इन तीनों के खेल का नाम जीवन कह लो तो कोई हर्ज़ नहीं. (दृष्टि मन्तव्य की ओर रहे न कि शब्दों की ओर). विचार मनुष्य के भावों का स्पष्टीकरण है. भाव विचारों के कारण उत्पन्न होते हैं. हर एक अणु, परमाणु अपनी धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) शाक्ति रखता है. दूसरे शब्दों में प्रत्येक शरीर में गुण, कर्म और स्वभाव मौजूद रहते हैं.

प्रत्येक शरीर चाहे वह छोटा हो या बड़े से बड़ा हो उसके अन्दर से धनात्मक व ऋणात्मक शक्ति या फ़ोर्स की धारें, लहरें या किरणें हर समय निकलती रहती हैं जिसको विज्ञान भी मानता है और इस शरीर के इर्दगिर्द घेरा या मंडल बांधे रहती हैं. जब एक शरीर दूसरे शरीर के घेरे में आता है तो दोनों शरीरों या अधिक शरीरों की फ़ोर्स आपस में टक्कर खाती हैं जिसके कारण इनमें परिवर्तन होता है. तब हर शरीर के अपने गुण-कर्म-स्वभाव या फ़ोर्स में नई प्रकार की लहर पैदा होती है. इसका नाम भाव है. इन भावों की अभिव्यक्ति (इज़हार) विचारों से शारीरिक गति के रूप में हुआ करती है.

मनुष्य का दिमाग जो बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ का बना हुआ है, तमाम शरीर के साथ बहुत ही बारीक-बारीक नसों और नाड़ियों से पिरोया हुआ है. जब एक शरीर के प्रभाव दूसरे शरीरों पर देखने, सुनने और छूने से पड़ते हैं तो वह दिमाग उन प्रभावों को ग्रहण कर लेता है और उसका दिमाग प्रभावित होता है और उसके गुण, कर्म स्वभाव में परिवर्तन पैदा करता है. इन प्रभावों और परिणामों को कोई एक देखता है जो न तो शरीर है न विचार न जीवन. वह कोई एक शरीर विचार और जीवन से अलग है. इसको तवज्जह या सुरत कह लो. अब समझ गये होगे कि भाव-विचार क्या हैं. चूँकि गुण, कर्म, स्वभाव या धनात्मक व ऋणात्मक शक्ति (Positive and negative forces) दूसरे शरीर के गुण, कर्म, स्वभाव को प्रभावित करते हैं इसलिये विचार और भावों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है.

प्रत्येक शरीर के गुण, कर्म और स्वभाव या उसकी धनात्मक और ऋणात्मक शक्ति (force) एक दूसरे पर प्रभावित होकर उसके विचारों में परिवर्तन पैदा करती रहती है. प्रत्येक शरीर पर दूसरे शरीर का असर हुआ करता है. उनका प्रभाव और परिणाम पृथक-पृथक हुआ करता है. एक ही बाह्य घटना के बाह्य प्रभाव तो एक ही होते हैं मगर उनका प्रभाव हर शरीर पर भिन्न-भिन्न हुआ करता है. जैसे किसी जगह बाढ़ से या गाड़ियों की टक्कर से कुछ आदमी डूब गये या मर गये. जिन्होंने देखा या सुना, उनमें से किसी ने घायलों या मुर्दों के माल को लूटा, किसी ने उनकी मरहम पट्टी की, किसी ने सोचा कि ऐसा क्यों हुआ इत्यादि. ऐसा क्यों होता है क्योंकि प्रत्येक की प्रकृति अलग-अलग होती है. यह प्रकृति का नियम है. इसलिये आपस में भिनन्ता का होना प्राकृतिक है.

मनुष्य धार्मिक दृष्टि कोण से

एक बच्चा जिस प्रकार के वातावरण में पलता है, वह उन्हीं विचारों को ग्रहण करने को विवश है. वही विचार और प्रभाव धीरे-धीरे परिपक्व होते हुये एक दृढ़ विश्वास के रूप में बदल जाते हैं. यदि वही व्यक्ति दूसरे धर्म के वातावरण में होता तो उसका धर्म अवश्य उसके वातावरण के अनुसार होता.

इसलिये सिद्ध हुआ कि मनुष्य किसी धर्म के साथ जन्म से लगाव रखते हुये संसार में नहीं आता, किन्तु जिस धर्म के विचार-प्रभाव उसको संगत में मिलते हैं, वह उस धर्म का बाना पहनकर धार्मिक बन जाता है. थोड़ा ध्यान से देखा जाये तो धर्म यथार्थ में सिवाय कुछ विचारों और रीति-रिवाज़ के कुछ नहीं हैं. जन्म के समय मनुष्य का बच्चा बिना किसी धर्म और पक्ष के पैदा होता है. उस बच्चे के विषय में कोई मत स्थिर नहीं किया जा सकता कि वह किस धर्म और पक्ष से संबन्ध रखेगा. उसके पालन-पोषण करने वाले या घटनाएँ या अवस्थायें जिस प्रकार के साँचे ढालना चाहें ढाल सकते हैं.

यह जो धर्मावलंबियों में आपस में मतभेद है, यह क्यों है? इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य को यह ज्ञान नहीं कि धर्म किस बला का नाम है. गहरी दृष्टि से देखोगे तो मालूम होगा कि प्रत्येक धर्म की नींव दो सिद्धान्तों पर है. एक सिद्धान्त मनुष्य को शारीरिक सुख और शान्ति प्राप्त कराता है, दूसरे से भ्रम और भ्रान्ति मिटती है. इन सिद्धान्तों को जिन महापुरुषों ने बनाया उन्होंने देश, काल, पात्र और जलवायु को दृष्टि में रखा. समय-समय पर देश-काल के परिवर्तन के साथ-साथ उन सिद्धान्तों में दूसरे महापुरुषों ने अलग-अलग संप्रदाय बनाकर परिवर्तन किया. यही कारण है कि हर मज़हब या धर्म के अनेक संप्रदाय या फ़िरके होते गये.

मतभेद का सबसे बड़ा कारण धार्मिक ग्रन्थ हैं. प्रत्येक धर्म का दावा है कि उसका ग्रन्थ ईश्वरीय प्रेरणा है या इल्हामी है. यह ईश्वरीय वाणी या इल्हाम क्या है? मनुष्य के चित्त पर जिस प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं उसी के अनुसार उसके अन्तर की आवाज़ होती है. उसको ईश्वरीय वाणी कहते हैं. मैं मानता हूं कि अन्तर की आवाज़ 99 प्रतिशत सच होती है लेकिन केवल ऐसे पुरुषों की जिनका हृदय शुद्ध होता है. जब कोई मनुष्य किसी एक विचार को ले लेता है तो उसका दिल उस विचार से भर जाता है. फिर उसके अन्तर की आवाज़ उसी प्रकार की होगी जिस प्रकार के विचार या दशा उसके मन की होगी. इसकी वाणी सच्ची होगी मगर वह सबके लिये ठीक नहीं हो सकती.

जितने महापुरुष संसार में आये, उन्हें उनके विचारानुसार अन्तरीय प्रेरणा हुई मगर वह उस समय के लिये या उन जैसों को ठीक थी. उस पुरुष की अन्तरीय आवाज सदा ठीक होती है जिसने देह, मन से ऊँचा जाने का साधन किया है. ऐसा पुरुष जो कहेगा वह किसी जाति या सम्प्रदाय के पक्ष में न होगा. अब आप समझ गये होंगे कि मनुष्य जन्म से किसी धर्म या सम्प्रदाय को साथ लेकर पैदा नहीं होता. वह बड़ा होने पर वातावरण के अनुसार स्वयं धर्म सम्प्रदाय से बंध जाता है.

मनुष्य पथ-प्रदर्शकों और आचार्यों के संबन्ध की दृष्टि से

साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि दूसरे लोग भी उस पथ-प्रदर्शक, गुरु या आचार्य

को मानें जिसको वह मानता है. यह भाव मनुष्य के अन्तर प्राकृतिक है. मनुष्य के अन्तर जो भाव उत्पन्न होते हैं, जिनको वह प्रकट करता है, उसका कारण बाह्य प्रभाव है. बाह्य प्रभावों का असर मनुष्य पर उसकी प्रकृति के अनुसार होता है और वह असर होकर स्वाभाविक रूप से उन मनुष्यों की ओर झुकता है जो उस भाव वाले होते हैं. इसलिये प्रत्येक मनुष्य के भावों की लहरें उस ओर झुकती हैं जहाँ उनको खेलने का अवसर मिलता है. इस दृष्टि से भी मनुष्य वह नहीं हैं जो वह समझता है.

मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टिकोण से

अध्यात्म या रूहानियत क्या वस्तु है, इसका निर्णय करना ऐसे मनुष्य का काम है जिसका जीवन स्वयं आध्यात्मिक हो. यह विषय कठिन है. इतना समझ लो कि शरीर, शारीरिक जीवन और कल्पनाओं का जो वस्तु अनुभव करती है वह आत्मा है. इसका अनुभव उसको हो सकता है जो शरीर, मन और भावों से अलग हो सकता है. प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है मगर जब तक वह साधन न करे, आध्यात्मिक नहीं है. साधन के पश्चात् ही उसको अनुभव हो सकता है. मनुष्य आत्मा रखता हुआ भी अपनी गलती से बिना साधन आध्यात्मिक नहीं है. इसका परिणाम यह है कि वह सदा संसार के ऊँच-नीच और बाह्य प्रभावों में झकोले लेता रहता है.

मनुष्य सत् (हक़ीक़त) की दृष्टि से

जहाँ आत्मा, मन और शरीर तीनों अपना काम करते हैं और मनुष्य के निज स्वरूप को तीनों के परिणामों का प्रभाव नहीं होता है, वह सहज समाधि है या सहजवृत्ति है. जब मनुष्य को संपूर्ण अवस्थाओं का (शरीर, मन आत्मा का) अनुभव हो जाता है तब यह दशा मनुष्य में उत्पन्न हो सकती है.

देश के अन्दर यदि ऐसे महापुरुष अधिक होते तो उनकी धारें या लहरें सुख-शान्ति लाती. विज्ञान वेत्ताओं ने शरीर को एक रेडियो स्टेशन माना है और प्रत्येक शरीर से लहरों का निकलना सिद्ध किया है. इस विषय पर एक लेख 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में तारीख 12-11-1950 में छपा था जिसका भाव यही है.

अपने आपको जानना

मेरा जीवन इस अपने आपको जानने में व्यतीत हो गया. कोई कहता है अपना आप ही ख़ुदा है. कोई कहता है अपना आप ही सब कुछ है, अपनी ही ज़ात (निज स्वरूप) है. इस अपने आपकी गलत समझ ने मानव जाति को अहंकारी बना दिया है. कोई अपने आपको हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, या और कुछ समझकर अहंभाव में फिरता है. कोई अपने आपको दानी, बुद्धिमान, विवेकी, ज्ञानी समझकर अपने अहंभाव में रहता है कोई अपने आपको ब्रह्म समझ कर अहंब्रह्मास्मि में फिरता है. कोई अनलहक़ समझता है. मैं इनका न खंडन करता हूँ, न मंडन.

मैंने क्या समझा? जब से गुरु पदवी पर आया लोगों ने अपने अनुभव कहे कि मेरा रूप उनकी सहायता करता है और मैं नहीं होता, न मरते समय ले जाता हूँ, न किसी के परीक्षा हाल में पर्चे हल कराता हूँ. तो मुझे विश्वास हो गया कि ये दृश्य मनुष्य के अपने ही मन और आत्मा की

क्रिया के खेल हैं. फिर अपने आपको शब्द और प्रकाश में ले गया और आनन्द लिया मगर सोचता हूँ कि प्रकाश के देखने वाला मेरे अन्तर में कोई और है तथा शब्द के सुनने वाल कोई और है. उसकी खोज करता हूँ जो इन सब का साक्षी है. यदि यह कहूँ जैसा कि पंथ या मंत्र-हवन करने वाले कहते हैं कि सब कुछ मनुष्य का आपा (**Self)** है तो उसमें यह शक्ति होनी चाहिये कि वह जो चाहे वह कर सके मगर नहीं कर सकता है. मैंने बड़े-बड़े अहंब्रह्म, अहंसत्यम्, अनलहक़ कहने वालों के जीवनों को अध्ययन किया है इस लिए मैं समझता हूँ कि एक अपरंपार, अदृश्य, अरंग, अरुप शक्ति है. उस शक्ति से या मौज से हमारा आपा (**Self)** बनता है और उसके क्षोभ के सिलसिले में उसी में लय हो जाता है.

जब से यह ज्ञान मुझे हुआ, अब क्या है**?** अब परम शान्ति है. न दुख, न सुख, न मुक्ति की चिन्ता न भगवान के मिलने की इच्छा. यहाँ आकर मुझे क्या मिला**?** ज़ाहिरा चुप, अन्तर में शान्ति.

जब तक जीवन है ऐसे पुरुष का जीवन किसी के लिये हानिकारक हो ही नहीं सकता. यह अवस्था मानवता का परिणाम है.

शारीरिक सुख

हर मनुष्य की स्वाभाविक रूप से यह इच्छा रहती है कि वह शरीर से स्वस्थ रहे मन में शान्ति रहे और उसको आनन्द मिले. अतः उनकी व्याख्या कर देना भी आवश्यक है.

शरीर का स्वस्थ रहना ही शारीरिक सुख है. जब तक शरीर स्वस्थ नहीं है, निरोग नहीं है तब तक शारीरिक सुख प्राप्त नहीं हो सकता. शरीर रोगी होते हुए मनुष्य जीवन के न तो दैनिक कार्यों को भली प्रकार कर सकता है और न अपना मानसिक संतुलन ठीक रख सकता है और न आध्यात्मिक मार्ग में बढ़ सकता है. इसलिये आवश्यक है मनुष्य शरीर सुख-भोग के लिये निम्न बातों का पूरी तरह पालन करे. यों तो स्वास्थ्य के संबन्ध में अनेकों पुस्तकें लिखी हुई हैं मगर मैं प्राकृतिक नियमों के आधार पर कुछ आवश्यक बातें वर्णन किये देता हूँ ताकि उसके पालन से मनुष्य शारीरिक सुख भोग सकें**:-**

(1) जिस तरह वृक्ष को अधिक खाद पानी दो तो वह मुरझा जाएगा और यदि कम दो तो कमजोर रहेगा, इसी प्रकार मनुष्य को आवश्यकता से अधिक या कम खाने का ध्यान रखना चाहिये ताकि शरीर का संतुलन न बिगड़े.

(2) अधिक गरिष्ठ या ऐसे पदार्थ जो देर से पचें या और प्रकृति के अनुकूल न हों नहीं खाना चाहिये. बासी, दुर्गन्ध युक्त तथा हानिकारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये.

(3) भोजन जहाँ तक हो सके सात्विक, सादा और हितकर हो, जिससे शरीर की पुष्टि हो और मन भी सम अवस्था में रहे क्योंकि मन भी सूक्ष्म तत्त्वों से बना है और भोजन का सूक्ष्म अंश उसका भोजन है.

(4) भोजन के पचाने के लिये और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये कुछ न कुछ शारीरिक परिश्रम

या व्यायाम अपनी प्रकृति और शक्ति और स्थिति के अनुसार आवश्यक है या वैद्य डाक्टरों की राय के अनुसार खाद्य पदार्थों का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि वे तुम्हारी प्रकृति, पाचन शक्ति, स्थिति आदि के अनुसार तुमको उचित राय दे देंगे.

(5) महीने में कभी-कभी पेट को आराम देना चाहिये. भोजन भूख लगने पर ही किया जाए.

(6) भोजन जहाँ तक हो सादा हो. भोजन के पदार्थों को जितनी ही क्रियाओं में होकर गुजारोगे उनका गुण उतना ही कम हो जाएगा.

(7) सादा भोजन से अभिप्राय यही है कि वह उत्तेजक, नशीला और गरिष्ठ न हो. जैसा अन्न, वैसा मन.

मानसिक सुख

मन की तरंगों को सम अवस्था में रखना उसी तरह आवश्यक है जिस तरह हृदय का धड़कन करना आवश्यक है. यदि धड़कन समाप्त हो जाय तो यह जीवन नहीं रह सकता. इसका नियमपूर्वक रहना शरीर को सुखदायक होता है इसी तरह मन का सम अवस्था में रहता ही मानसिक सुख है. जीवन में कोई व्यक्ति मन का नाश नहीं कर सकता. जब नाश होगा तो जीवन नहीं रहेगा इसको सम अवस्था में या काबू में रखना चाहिये. इसको समता में रखने के लिये किसी सम अवस्था में रहने वाले गुरु की आवश्यकता है जो तुम्हारी प्रकृति, वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार तुमको तजवीज़ व तदबीर बताये. इसका नाम ही सुमिरन ध्यान है. और किसी बाह्य गुरु का आज्ञा पालन अनिवार्य है.

दूसरों की टीका टिप्पणी (**Criticism)** व अपनी ख़ुदी या अहंकार मन के विचारों को सम अवस्था में रहने नहीं देते. इसलिये अपनी प्रशंसा (**Self Praise)** परदोष दर्शन के भावों को रोकना चाहिये. ऐसा करने के लिये किसी सच्चे साधु का सत्संग जो मन के कानून को जानता हो, आवश्यक है.

इन ऊपर लिखे नियमों में 'अहिंसापरमोधर्मः', समानता का व्यवहार, प्रेम व्यवहार सब कुछ आ जाता है. यह तब आयेगा जब किसी को इस मन के रूप का पता लग जायगा. जब तक सत्संग द्वारा और निज अनुभव द्वारा मन का रूप समझ में नहीं आता, लाख प्रयत्न करने पर भी ये सब गुण आदमी के अन्दर पैदा हो नहीं सकते.

(किसी को और अधिक व्याख्या की आवश्यकता हो तो मेरा और महर्षि 'शिव' का साहित्य पढ़ें)

दया, क्षमा तथा नीयत को साफ़ रखना केवल मानसिक ज्ञान के आधार पर है. संकल्प अपना प्रभाव रखता है. यह मैंने पहले भी बताया है कि लोगों ने अपने विचार द्वारा प्रत्यक्ष में तथा अन्तर में मेरा रूप प्रगट करके उससे सहायता ली है और मुझे पता भी नहीं था और न मैं था. दूसरा उदाहरण यद्यपि गंदा है मगर यह है कि स्वप्नावस्था में जब मनुष्य ने भोग किया तो वीर्यपात हो गया. इससे निश्चय हो जाना चाहिये कि विचार में महान शक्ति है. जिसको यह भान हो जाता है कि विचार में बड़ी शक्ति है वह यदि ठीक रखने की कोशिश करेगा. यदि कोई हेरा-

फेरी, धोखा-फ़रेब या हिंसा करेगा उसको विचार की शक्ति के अनुसार उसकी सजा, दुख और अशान्ति अवश्य मिलेगी. इसलिये मैं कहा करता हूँ कि शुभ संकल्प रखो और आशावादी रहो.

मन का रूप

इस मन के विषय पर यह कह देना भी आवश्यक है कि मन क्या है और इसका रूप क्या है. हर एक आदमी यदि अपने मन में ठहर जाय तो उसको मालूम हो जाएगा कि उसके अन्तर से स्वयं संकल्प-विकल्प या तरह-तरह के विचार उठते रहते हैं. ये जो संकल्प विकल्प हैं कहीं बाहर से तो आते नहीं, यह तो संस्कार विचार (Impressions and Suggestions) तथा बाह्य प्रभाव जो दिमाग पर पड़े हुये हैं या पड़ते हैं वे उभरते हैं. फिर मन का रूप क्या हुआ? मन का रूप एक सूक्ष्म तत्त्व है. जब उसके ऊपर कोई दूसरे प्रभाव व संस्कार नहीं होते हैं वह सुन्न अवस्था में होता है. जब प्रभाव पड़ जाते हैं या पड़े हुए होते हैं यह फुरना कर देते हैं उसको मन कहते हैं. उसमें से मन, चित्, बुद्धि, अहंकार बन-बन कर काम करते हैं. एक छोटा बच्चा पैदा होता है. उसके दिमाग पर जो प्रभाव पड़ते हैं या बाह्य प्रभाव पड़ते हैं उनके अनुसार उसके मन, बुद्धि, चित्, अहंकार बढ़ते जाते हैं इसलिये मन एक सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु है. जब वह अपने आप में होता है या स्थिर होता है, उसकी निर्विकल्प समाधि, महासुन्न या दसवाँ द्वार कहते हैं.

आत्मिक सुख या आनन्द

अपने आपको प्रकाश स्वरूप हो जाना ही आत्मपना है. यह तब आएगा जब मनुष्य को मन के रूप का ज्ञान हो जायगा. फिर मन के रूपों में वह फँसेगा नहीं. जब तक यह अवस्था नहीं आती तब तक यदि वह प्रकाश का साधन भी करेगा तो गिरता रहेगा. यदि साधन करने में ज़बरदस्ती करेगा तो उसके दिमाग के बिगड़ने का भी डर रहेगा. इसलिये किसी संत की जो स्वयं आत्मनेष्टी हो, संगत और सत्संगत में रहना और उसकी आज्ञा में रहना आवश्यक है.

मानवता के नियम

दूसरा भाग

प्रायः लोग पूछा करते हैं कि मानवता को आपने युगधर्म माना है मगर इसके नियम क्या हैं जिन पर मनुष्य चल सके. कहने को तो मैं अपने सत्संगों और अपनी पुस्तकों में बहुत कुछ कह चुका हूँ और यहाँ भी बहुत कुछ कह दिया है मगर चूँकि देवीचरन मीतल एडीटर 'शिव' ने भी आग्रह किया था तथा सेठ दुर्गादास तथा अतः उन नियमों को संक्षेप में प्राकृतिक नियमों तथा विज्ञान के आधार पर वर्णन कर रहा हूँ ताकि किसी धर्म-संप्रदायवादी को इनके मानने और इनके

पालन में कोई आपत्ति न हो.

पहला नियम

जीवन शक्ति की रक्षा या ब्रह्मचर्य पालन

हमारे शरीर में जो जीवनशक्ति (energy and vitality) है वह वीर्य है. लोग ब्रह्मचर्य का नाम सुनकर कानों पर हाथ रखते हैं. इसलिये मैंने जीवनशक्ति का शब्द प्रयोग किया है. इसी शक्ति से रचना होती है. डाक्टरों का कहना है कि हमारे वीर्य की एक बूँद में बच्चे पैदा करने वाले इतने कीटाणु हैं कि संसार भर की स्त्रियाँ गर्भवती हो सकती हैं यदि मनुष्य इसको कायम रखे तो उसके अन्दर अत्यंत बल, तेज और साहस होता है. अतः इसकी शारीरिक व मानसिक रूप से रक्षा करनी चाहिये. मानसिक ब्रह्मचर्य से मेरा अभिप्राय यह है कि विचारों द्वारा काम भोग का आनन्द न लिया जाए.

जब मनुष्य इस महान शक्ति को इन्द्रियों के वशीभूत होकर स्त्री संभोग में नष्ट करता है तो वह इस शरीर रूपी इमारत की नींव को खोखला करता है और थोड़े ही समय में अनेक रोगों का शिकार बनता है. शरीर निर्बल, निस्तेज, उत्साहहीन और मन अशान्त हो जाता है. मंदाग्नि आदि रोगों से पीड़ित होकर नित्य डाक्टरों का दरवाजा खटखटाता है. मेरे पास बड़े-बड़े प्रोफेसर, डॉक्टर तथा सैनिक अफ़सर आए जो अशान्त थे. कारण यही पाया गया कि वे मानसिक व्यभिचारी थे.

मनुष्य को चाहिए कि संतान पैदा करने के लिये ही इस शक्ति को व्यय करे. काम वासनाओं की तृप्ति के लिये अधिक काम भोग का परिणाम यह है कि संतान की आवश्यकता न होते हुये भी बच्चे पैदा हो रहे हैं जैसे खुदरो वृक्ष. वह भी दुर्बल, जिनका पालन-पोषण भली प्रकार नहीं हो पाता. आबादी बढ़ रही है जिसको कम करने को भारत सरकार तथा अन्य देश भी प्रयत्नशील है. अतः हमें शारीरिक और मानसिक रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना परम आवश्यक है. यह संक्षेप में वर्णन कर दिया है अधिक जानकारी के लिये मेरा साहित्य पढ़ लें. ब्रह्मचर्य पालन में सादा भोजन, सादा रहन-सहन, सतों का सत्संग और सद्ग्रंथों का स्वाध्याय बहुत सहायता करते हैं.

दूसरा नियम

शुभ संकल्प

शिव संकल्प क्या है? इससे मेरा भाव यह है कि ऐसे विचार करना या ऐसी बातें सोचना जिससे अपना और दूसरों का भला हो. अनेक बार आदमी कमजोर, निराशावादी या भय के ख्याल उठाता है. परिणाम यह होता है कि उसके निराशा, भय के ख्याल ब्रह्मांड में जाकर जब वापिस आते हैं तो उसी के लिये भय और निराशा पैदा कर देते हैं. जैसा कि न्यूटन की थ्योरी में सिद्ध किया है कि यदि तुम अपना हाथ हिलाओ तो तुम्हारे हाथ की गति सितारों तक जाकर फिर वहीं वापिस आ जाती है जहाँ से गति शुरु हुई थी. यह थ्योरी शारीरिक गति की बात है. इसी

सिद्धान्त के अनुसार हर एक जीव के अन्तर से जो संकल्प उठते हैं वे ऊपर के लोकों तक जाते हैं. वे समय पर फिर वापिस आते हैं और उनका प्रभाव उसी जगह होता है या उसी मन पर होता है जिस मन से वह संकल्प उठा था. इसलिये यदि संसार में मनुष्य रहना चाहता है तो उसको शिव संकल्प रखना आवश्यक है. न कभी किसी का बुरा चाहे, न सोचे और न किसी का बुरा करे. (Optimistic) विचार रखना मेरी समझ में शिव संकल्प में आता है.

तीसरा नियम

काम में लगे रहना

तुम देखते हो कि प्रकृति की समस्त शक्तियाँ निरन्तर अपने-अपने कार्य में लगी रहती हैं. एक क्षण को भी बेकार नहीं रहती. सूर्य समय पर उदय होता और डूबता है. वायु निरन्तर चलती रहती है. इसलिये मनुष्य को सदा काम में व्यस्त रहना चाहिये. बेकार आदमी का मन चंचल रहता है और व्यर्थ बातें सोचा करता है. काम में दत्त चित्त होकर लगे रहने से मन चंचल नहीं होता और अनावश्यक तथा गंदे विचारों से बचा रहता है. इसका परिणाम यह होता है कि वह काम भी अधिक कर जाता है और प्रसन्न रहता है. अन्य इन्द्रियाँ भी विचलित नहीं होने पातीं. काम में लगे रहना यों भी आवश्यक है कि आज महँगाई का युग है. खर्चों की पूर्ति नहीं होती है जिससे मनुष्य दुखी और अशान्त रहता है और अनुचित ढंगों से धन उपार्जन करने के प्रयत्न करता है. अपनी जीविका आप कमाना अत्यन्त आवश्यक है. दूसरों पर निर्भर रहने या उनके आश्रित रहने से दुखी और अशान्त रहता है.

चौथा नियम

इन्द्रियों को वश में रखना

संकल्प का संबन्ध मन से होता है. इसलिये सबसे श्रेष्ठ उपाय अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय और अच्छी संगत रखना है ताकि मन गलत ख्याल के प्रभाव में रहकर सोचे नहीं. जब मन सोचेगा नहीं तो गलत काम भी इन्द्रियां नहीं करेंगी. इसलिये मानव को किसी महापुरुष की आज्ञा के अधीन रहना चाहिये ताकि उसका मन और इन्द्रियाँ गलत ख्याल लेकर ऐसा संकल्प न उठायें जिससे न्यूटन की थ्येरी के अनुसार उसकी अपनी ही हानि हो. इसीलिये गुरु महिमा है. तुमने गुरु तो किया मगर गुरु की आज्ञा में नहीं चलते. दुख से कहना पड़ता है कि गुरु लोग भी जो गुरु बनकर गुरुपने का काम करते हैं यह अपने गुरु बनने तथा मान प्रतिष्ठा के लिये काम करते हैं दूसरों के हित के लिये नहीं. ऐसी दशा में मेरे अनुभव में यह आया है कि चूँकि यह संकल्प की दुनिया है, इसमें यदि कोई सचमुच अपना सुधार चाहता है तो वह सच्चे दिल से अपने सुधार और शान्ति की वासना रखे. उसके विचार ब्रह्मांड में जाएँगे और वापिस आकर उसको ऐसी जगह पहुँचा देंगे जहाँ उसको रहबरी करने वाला सच्चा पुरुष स्वयं मिल जाएगा जैसे मुझे मिला था.

पाँचवाँ नियम

दूसरों का चित्त न दुखाना

मन, बुद्धि, चित्, अहंकार ये चारों मन के ही अंग हैं. यह मन सूक्ष्म शक्ति है. जब किसी दूसरे व्यक्ति का मन या चित् किसी कटु शब्द से, दुर्व्यवहार से, हानि पहुँचाने से, सताने आदि से दुखाया जाता है तो उसका मन या चित् दुखी होता है. यदि विरोध नहीं करता या कर सकता तो उनके विचार अधिक हानि पहुँचायेंगे. इसी लिये मनुष्य को भूल कर भी किसी के चित् को मन, वाणी और कर्म से दुखाना नहीं चाहिये. बिना कार्य के आवश्यक बातें भी न की जाएँ.

इस चित्त के दुखाने में वाणी का सबसे अधिक भाग होता है. कटु वचन, तानेज़नी, पैनी छुरी हैं जो मनुष्य हृदय को छेद देती हैं. कहा है :-

शब्द ही मारे मर गये, शब्द ही तजिया राज ।

जो यह शब्द विवेकिया, ताका सरिया काज ।।

इसलिये अहितकर, अप्रिय, अपमानजनक वचन कभी न बोलो. जिसको बुरी वाणी बोली जाती है उस पर तो बुरा प्रभाव होता ही है मगर तुम भी उसके परिणाम से बच नहीं सकते. यदि तुम अपनी वाणी (जिह्वा) को वश में कर सकते हो तो तुम सारे शरीर और मन को सरलता से वश में कर सकते हो.

छटवाँ नियम

सहनशक्ति

प्रकृति की शक्तियों में यह गुण मौजूद है. मनुष्य हर प्रकार के गंदे पदार्थ, मलमूत्र आदि पृथ्वी पर फेंकता रहता है जल में मलमूत्र आदि बहाये जाते हैं तथा अन्य कामों में लाकर उसको गंदा किया जाता है. वायु को अनेक प्रकार से दूषित करते हो मगर ये शक्तियां इन सबको सहन करती रहती हैं. इसी प्रकार मनुष्य को भी दूसरों के कटु शब्दों तथा दुर्व्यवहार को सहन करना चाहिये.

सातवाँ नियम

दूसरों के काम आना

प्राकृतिक शक्तियाँ दूसरों के हित के लिये निष्काम और निस्वार्थ बनकर काम करती रहती हैं. कोई बदला नहीं चाहती. इसी प्रकार हमको भी अपना कार्य दूसरों के हित की दृष्टि से या उपकार की भावना से करते रहना चाहिये. दूसरों से कोई बदला चाहने या अपने काम आने का ख्याल तक मन में नहीं, आना चाहिये. दया, क्षमा, सेवा तथा प्रेम इसी के अंतर्गत हैं.

आठवाँ नियम

दूसरों के साथ व्यवहार

दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाये जैसा कि मनुष्य अपने लिये चाहता है. यदि इसके प्रतिकूल व्यवहार करोगे तो दूसरे भी तुम्हारे साथ वैसा ही करेंगे. यदि मान-सम्मान चाहते हो तो दूसरों को मान-सम्मान दो. यदि प्रेम चाहते हो तो दूसरों से प्रेम करो. तुमको मान-सम्मान और प्रेम मिल जायगा. दूसरों से सेवा चाहते हो तो उनकी सेवा करो. दूसरों से घृणा-द्वेष करोगे तो घृणा और द्वेष हिस्से में आएँगे. बुरा बोलोगे तो बुरा सुनना पडेगा. और बातें भी इसी प्रकार समझ लो.

आवश्यक बातें

घरेलू व्यवहार

घर वह है जिसमें हमारी शारीरिक और मानसिक आवश्यकतायें पूरी होती हैं. हम आवश्यकताओं को पूरी रखने को मकान की सफाई करेंगे, अन्य आराम की वस्तुओं को देखेंगे कि कैसे मिलें. साथ ही परिवार के लोग हैं उनको अपने अनुकूल बनाने की, रखने की स्वाभाविक इच्छा हममें मौजूद होती है. उसका नाम घरेलू व्यवहार है.

इसको ठीक रखने के लिये घर की परिस्थितियों और समय की आवश्यकताओं के अनुसार काम करना आवश्यक है. जिस तरह कोई गंदी चीज मकान में हो तो हम उसको बाहर फेंकने के लिये मजबूर हैं, इसी तरह जब हमारे घरेलू जीवन में हमारे परिवार वालों के साथ अनुकूलता नहीं रहती, हम स्वतः उनसे अलग होने या उनको अलग करने के लिये विवश होते हैं. कोशिश यह करनी चाहिये कि हम घरेलू व्यवहार में घर की अनुकूलता या शान्ति को स्थित रखें. यदि किसी कारण परिस्थितियों के अनुकूल न होने से ऐसा नहीं हो सकता तो अलग हो जाओ या दूसरी वस्तु या आदमी को अलग कर दो ताकि शान्ति रहे. माँ-बाप तथा बड़ों की सेवा सब इसी के अंतर्गत हैं.

शुभ कर्म

संसार में शुभ और अशुभ शब्द सापेक्ष (निस्वती) हैं. एक समय में जो एक कर्म शुभ है वही दूसरे समय में अशुभ हो सकता है जो आज अशुभ है कल को वही काम शुभ हो सकता है. शुभ और अशुभ कर्म में केवल यह देखना पड़ता है कि जिस कर्म से हमारी अपनी आत्मा को, अपने आपको और दूसरों को सुख मिले, शान्ति मिले, सहारा या सहायता मिले वह शुभ कर्म है. इसके विपरीत कर्म अशुभ है.

शुभ कमाई

जो खाद्य पदार्थ, सामान या धन, जिससे हम अपने जीवन की यात्रा पूरी करते हैं, यदि वह बिना किसी परिश्रम के प्राप्त किया या स्वाभाविक मिल गया या ज़बरदस्ती दूसरों की इच्छा बिना

किसी से ले लिया, वह शुद्ध कमाई नहीं है. ऐसी कमाई से अपना जीवन व्यतीत करने से तुम मन की दशा को ठीक नहीं रख सकते. चूँकि जिनसे जबरन या अनुचित ढंग से वह धन या खाद्य पदार्थ लिये हैं, उनके अशुभ भाव तुम्हारे मन को गंदा करेंगे और जो यों ही मुफ्त मिल गये हैं उसका तुम्हारे मन पर कोई अच्छा संस्कार नहीं आयेगा. प्रसन्नता नहीं मिलेगी, सन्तुष्टि नहीं होगी.

दान

साधारणतया हम जो किसी को निःस्वार्थ भाव से किसी दूसरे को हित और प्रेम से कोई पैसा, कपड़ा, भोजन या दवा देते हैं, दान कहा जाता है. इस दान की भावना मन के अन्दर पैदा होती है और यह भी तब जब बाह्य संस्कार, प्रभाव, विचारवश तुम्हारा मन किसी बाहरी वस्तु को प्रेम करे, या हित करे तो जिसको तुम प्रेम करोगे उसको अच्छा सुन्दर बनाने का जो भाव तुम्हारे अन्दर उत्पन्न होगा वह भी दान ही होगा.

प्रेम और भक्ति

प्रेम और भक्ति मेरे अनुभव के अनुसार केवल सत्गुरु के वचनों से होनी चाहिये. साकार रूप का बाहरी प्रेम कुछ समय के लिये लाभ करता है. सत्गुरु के वचन को मानना, अमल करना मेरी समझ में सच्चा प्रेम और भक्ति है.

जो नीची श्रेणी वाले हैं अर्थात् जो शरीर और पदार्थों को ही मुख्य समझते हैं और जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण और शुद्ध नहीं है, उनके लिये किसी प्रेममय, दयामय, ज्ञानमय, निर्वाणमय पुरुष के दर्शन उसका सत्संग स्वयं मनुष्य के जीवन में परिवर्तन ला देगा. गुरु ऐसा हो जिसने अपने स्वार्थ, डेरा, धाम व पंथ के लिये गुरुवाई न की हो. सबसे बड़ा गुरु प्रेम है.

श्रद्धा और विश्वास

जब हमारी बुद्धि किसी बात पर निश्चय कर जाती है कि यह बात या वस्तु ऐसी है उस निश्चय पर स्थित रहना विश्वास है और उस विश्वास को स्थित रखना श्रद्धा और विश्वास समय समय पर अपनी दशाओं या कैफियतों को बदलते रहते हैं. निज अनुभव के आधार पर इनके रूप बदलते रहते हैं. मैं अपना उदाहरण देता हूँ--

मैं मालिक को मानता हुआ उसको साकार रूप में मानता था फिर उसको निराकार माना, फिर प्रकाश और शब्द में माना. अब उसको सबसे ऊँचा मानता हूँ. श्रद्धा और विश्वास तो पहले भी था और अब भी है मगर उसके रूप बदल गये.

भिन्न भिन्न रूपों में विश्वास का होना मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक प्रकृति पर निर्भर है. इसके लिये एक नियम नहीं है. कोई किसी रूप द्वारा विश्वास रखता है कोई किसी रूप द्वारा.

अपने आपको सच्चा बनाओ

अपने आपको सच्चा बनाओ. सच्चा केवल वह बन सकता है जिसको दूसरों के अनुभवों पर चलने से सफलता नहीं होती. तब वह दूसरों के अनुभवों को छोड़कर अपने ही निजी अनुभव के आधार पर जीवन के किसी स्थल में चलता है.

अपने अनुभव के आधार पर अपने जीवन को गुजारना अपने आपको सच्चा बनाना है. ज्यों-जयों अनुभव बदलता जायगा त्यों-त्यों मनुष्य का काम करने का ढंग या मार्ग (Line of action) बदलता जाएगा.

एक आदमी को चोरी करने या जुआ खेलने की आदत है जब इसको पूरा अनुभव हो जाएगा कि यह ठीक नहीं है और फिर भी उसको करता है तो वह अपने आप में सच्चा नहीं है.

शरणागत

जब मनुष्य जीवन की यात्रा करता हुआ सफलता और असफलता दोनों-दोनों प्रकार के अनुभवों से पूर्ण चेतवान हो जाता है और वह देखता है कि जीवन में सफलता और असफलता दोनों ही आती-जाती रहती हैं तो अपनी आत्मिक शान्ति के लिये किसी ऐसी जगह जाना चाहता है जहाँ उसको सफलता असफलता का दुख-सुख न हो. उस अवस्था का नाम शरणागत होना है. यह शरणागत की अवस्था किसी को जीवन के संघर्ष के बिना नहीं आ सकती. शांति प्राप्त करने के लिए जीवन यात्रा में यह अंतिम प्रयत्न है.

सुमिरन

सुमिरन का अर्थ है किसी को बार-बार स्मरण करना. इसकी शिक्षा हर एक धर्म संप्रदाय में है. लोग अपने-अपने विश्वास के अनुसार ईश्वर, परमेश्वर, देवी, देवता, ख़ुदा या गुरु का स्मरण करते हैं या ग्रंथों का पाठ करते हैं. मगर यह स्मरण केवल वाणी तक सीमित हो गया है चूँकि सच्चा ज्ञान नहीं है. प्रार्थना या सुमिरन मन को निर्मल करने तथा चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके आगे आत्म अनुभव प्राप्ति के लिए प्रथम सीढ़ी है. वाणी से स्मरण का भी फल होता है मगर नाममात्र को. हाँ, यदि कोई दुखी प्राणी अंतर से कोई पुकार या प्रार्थना करता है तो उसका फल शीघ्र होता है.

इसी प्रकार कोई व्यक्ति अपने पाप कर्मों से दुखी हो कर प्रायश्चित करता है या प्रार्थना करता है तो उसका मन हलका हो जाता है और उन कर्मों का प्रभाव भी कम होता है. कोई मनुष्य किसी के अवगुण देखता है तो वह उस व्यक्ति का मनुष्य बार-बार स्मरण करता है. फलस्वरूप वही अवगुण उस मनुष्य में आ जाएँगे.

इसलिए पहले सत्संग द्वारा बात को समझ कर गुरु या सत्पुरुष की आज्ञानुसार सुमिरन करना उचित है.

ध्यान

जैसा कि मैंने पहले कहा है कि लोगों ने कष्ट के समय मेरा ध्यान किया और मेरा रूप प्रकट हो गया, जिसने उनकी सहायता की. यह ध्यान प्राचीन काल में भी बताया जाता था. ध्यान की शक्ति बड़ी प्रबल होती है. ध्यान भी उसी समय हो पाता है जब मनुष्य का मन एकाग्र हो जाता है मगर यह ध्यान बिना किसी आत्मनेष्टी, निःस्वार्थ, परहितकारी महापुरुष या गुरु से बिना पूछे नहीं करना चाहिये अन्यथा हानि होने का डर रहता है. मनुष्य के मन में तरह-तरह के गंदे विचार भरे रहते हैं और वही विचार शक्तिशाली हो जाते हैं जो मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं. इसलिये पहले किसी सत्गुरु का सत्संग करना लाजिमी है. ध्यान की शक्ति बलवान होने पर उसकी मनोकामनाओं की पूर्ति होती रहती है मगर ध्यान किस का किया जाय यह एक सवाल है. ध्यान अपने इष्ट का, या आत्मनेष्टी गुरु का, या जिसका विश्वास हो, उसका ध्यान गुरु की आज्ञानुसार करना चाहिये.

आत्म अनुभव

आत्म-अनुभव करने के लिये किसी सत् या निष्काम, निःस्वार्थ, आत्मनेष्टी तथा अनुभव पुरुष की संगत और सत्संग लाजिमी है. उसकी गाइडेंस और हिदायतों के अनुसार चलना चाहिये. हाँ इतना कह देना आवश्यक है कि जब तक किसी का मन निर्मल नहीं होता, चित्त की वृति एकाग्र नहीं होती वह आत्म अनुभव क्रियात्मक रूप से नहीं कर सकता. मैंने अपने सत्संगों तथा पुस्तकों में आध्यात्मिक विषय पर निज अनुभव के आधार पर स्पष्ट रूप से वर्णन कर दिया है, मगर यह पुस्तक आम पब्लिक के लिये है पुस्तकों के आधार पर साधन करने में हानि हो जाने का भय है इस लिये इस पर अधिक कहना आवश्यक नहीं समझता.

हाँ, मन को शुद्ध करने, जीवन व्यवहार को सुखदायक बनाने के लिये मैंने इस छोटी सी पुस्तक में बहुत कुछ कह दिया है. ज्यों-ज्यों मन निर्मल होता जायेगा, यदि किसी की सच्ची लगन आत्म अनुभव की होगी तो प्रकृति उसको या तो उसको किसी अनुभवी पुरुष तक पहुँचा देगी या वह पुरुष स्वयं उसके पास पहुँच जायेगा.

==मानवता युगधर्म==